





॥ नमः श्रीवीतरागाय ॥

लघुशांतिसुधासिंधु



रचयिता,

[illegible], परमपूज्य,

आचार्य श्रीकुंथुसागरजी महाराज.

स्थायिसदस्य

ल फतेचंद साबली
स नानचंद ईडर
ंद लखमीचंद
शमुरामजी मंद
ल पीताम्बरदास
नर
ल जेसिंगभाई
अहमद
ादास कडिया
शिवलाल कलो
ोत्तमदास नरसीपुर
ल ानचंद
दि. जैन मंदि
उजमभाई

१४ परी अमीचंद देवकरण ,,
१५ परी हरचंद गोरधनदास ,,
शा. नेमचद तलकचंद नरसीपुर
शा नेमचंद त्रिभुवनदास ,,
१८ शा. केशवलाल लल्लुभाई ,,
१९ शा हरीलाल शातिदास जहेर
२० शा शिवलाल लल्लुभाई ,,
२१ शेठ साकरचंद जगजीवनदास नरोडा
२२ शा छोटालाल पीताबरदास नरसीपुर
२३ शा हरीलाल मगनलाल जहेर
२४ श्री दि जैनमंदिर विजयनगर
२५ शा. चिमनलाल माईलाल महेलाव
२६ शा केवलदास रावजीभाई ईडर

३९ छगनलाल जेठाभाई पोशी
४० सि. तोडरमल कन्हैयाल
४१ शाह वाडीलाल जगजीव
(सुमनलाल वाडीलाल)
४२ सेठ भोगीलाल मगनला
४३ सेठ माणिकचद भाईचंद
४४ सेठ मगनलाल कोदरला
४५ पनालाल उमाभाई अहम
४६ संकश्वर मणिलाल जिवर
४७ संकेश्वर ीचद उदय
४८ मेहता रायचंद माणि
४९ श्री केसरबाई बाव
५० ब्रह्मचारिणी चिम
५१ सोभागचद कां
५२ चंचलबाई चुनि

श्रीआचार्य कुंथुसागरग्रंथमाला पुष्प नं० ३५

॥ ॐ ॥

श्रीमत्परमपूज्य विद्वच्छिरोमणि प्रातःस्मरणीय दिगंबर
जैनाचार्यश्रीकुन्थुसागरजीमहाराजविरचित

लघुशांतिसुधासिंधु

प्रकाशक —
दिगंबर जैन जैनसमाज डूंगरपुरकी ओरसे
विजयलाल जैन बी० कॉम, डूंगरपुर.

—✱—

प्रति १००० | वी संवत २४६९. सन् १९४२ | मूल्य शांतिसुधापान

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है।

सामान्य नियम.

१ इस ग्रंथमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकार की जायगी।

२ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रथमालाका स्थायी सभासद बनेंगे उनको ग्रथमालासे प्रकाशित सर्वग्रथ पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे।

३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रथ दिये जायेंगे।

५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे।

६ ग्रथके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रथमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रंथोके उद्धार मे ही होगा।

७ ग्रंथमालाकी ट्रस्टडीड होकर मुंबईमे वह रजिस्टर्ड होचुका है।

सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी

ठि. रावजी सखाराम दोशी, मंगलवार पेठ, सोलापुर.

ग्रंथमालासंबधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें

वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला, सोलापुर.

डूंगरपुर चातुर्मासकी स्मृति।

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय, तपोनिधि, विद्वद्वर्य, आचार्य श्री १०८ श्री कुंथुसागरजी महाराजका संघसहित चातुर्मास संवत १९९८ वीर संवत २४६८ डूंगरपुर नगरमें अत्यन्त समारोह और आनन्दके साथ हुआ। संघमें पूज्यवर मुनिराज श्री १०८ श्री आदिसागरजी एवं अजितसागरजी महाराज और अर्जिका श्री धर्ममतिजी एवं विमलमतिजी और क्षुल्लिका ज्ञानमतिजी थे। डूंगरपुरके जैन समाजको मुनियोंके चातुर्मासका यह प्रथम सुअवसर था। स्थानीय समाजने अत्यन्त भक्ति और उत्साह पूर्वक चातुर्मास सम्पादन कराया।

डूंगरपुरमें लौकिक शिक्षाके साथ धार्मिक शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं था। स्थानीय हाईस्कूलमें विद्याध्ययनके लिये जो बालक बाहर गावोंसे यहां आते थे उनके रहनेका कोई प्रबन्ध नहीं था। डूंगरपुरके लिये यह एक भारी कमी थी जिसे पूरा करने आचार्यश्रीका दिव्य उपदेश हुआ और इस उपदेशसे प्रेरित होकर स्थानीय समाजने श्री कुंथुसागर दिगम्बर जैन बोर्डिंग स्थापित किया। इसका उद्घाटन संस्कार गत श्रावण शुक्ल २ को हुआ। आचार्यश्रीके उपदेशसे इस बोर्डिंगके हेतु जो कोष जमा हुआ उसकी रकम नीचे लिखी गई है।

आचार्यश्रीके मुखारविंदसे श्री महारावल हायस्कूलके कम्पाउन्डमें श्रीमान् परम आदरणीय महाराज श्री वीरभद्रसिंहजी साहिब दीवान, डुंगरपुर स्टेटके सभापतित्वमे २ दिन तक नगरकी समस्त जनताके समक्ष विश्वधर्म पर व्याख्यान हुए । जबतक आचार्य श्रीका यहा विराजना रहा, प्रतिदिन सायंकालको ४ से ५ बजे तक भिन्न २ विषयोंपर श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन धर्मशालामें व्याख्यान होते रहे । सदैव व्याख्यानका अमृतपान करनेके लिए बहुत संख्यामे जनता एकत्रिक होती थी । इस वर्ष स्वामी श्री मोहनानन्दजी महाराज राजगुरुजीका चातुर्मास भी डुंगरपुरमें हुआ । दोनों विद्वान् महात्माओंके धर्मोपदेशका यहाकी जैन अजैन समाजपर भारी प्रभाव हुआ । दोनों महात्माओंका समय २ पर मिलना होता रहा ।

आचार्यसंघके चातुर्मास समाप्त होनेके समय कार्तिक मासमें श्री त्रिलोकमंडलविधानका उत्सव किया गया । इस समय पर बाहरसे लगभग ५०० यात्री आचार्य श्रीके दर्शनार्थ यहा आये । कलशाभिषेक एवं रथयात्राके महोत्सव अत्यन्त समारोहसे मनाये गये । उत्सवकी समाप्ति पर समस्त वैश्यसमाजका एक प्रीति भोजन किया गया ।

पूज्य आचार्यश्रीके चातुर्मासके उपलक्षमें स्थानीय समाजकी ओरसे नीचे अनुसार रकम दान हुई ।

९८६४॥)	श्रीकुंथुसागर दि. जैन बोर्डिंग ध्रौव्य कोष.
६०७)	श्रीकुंथुसागर दि. जैन बोर्डिंग साधारण आय.
२७४९)	संघ चातुर्मास चंदा.
२२७९।)	त्रिलोकमंडल विधानका चढावा (बोर्डिंगको भेट)
७३८।)	आचार्यश्रीके आहार दानमें.
७२९)	स्वार्मी वत्सलका चंदा.
१६२३)	श्रीकुंथुसागर ग्रंथमालाको भेट.
१३९।≡)	शास्त्र दानमें.
४१=)	मुतफरकात आमद.
१८,७७०॥-)	

इस रकमके अलावा रु. १४॥-) का मासिक चंदा बोर्डिंग को देते रहनेके वायदे किये गये है।

समाजकी ओरसे चातुर्मास प्रबंध एवं त्रिलोकमंडल विधान उत्सवका खर्च निम्नानुसार हुआ।

११५०≡)।	चातुर्मास खर्च.
११७२।≡)	त्रिलोक मंडल विधान.
१०५१✓)।	स्वामी वत्सल.
६५७॥।✓)	आहार दानकी आयमेंसे व्यय.
२९)	भारतवर्षीय विद्यालयोंको भेट.
१९)	तीर्थक्षेत्र कमेटीको भेट.
४०७९॥✓॥	

डूंगरपुर नरेश श्रीमान् महिमहेंद्र महाराजाधिराज महाराव-लजी श्री लक्ष्मणसिंहजी बहादुरने श्री रिखबदेवजी एवं श्री स्वामी नारायणजीके मंदिरमें अपने शुभ पदार्पण द्वारा पूज्य आचार्यश्रीके धर्मोपदेशका पान श्रवण फरमाया। आचार्यश्रीने डूंगरपुर में चातुर्मास विराजकर 'मनुष्यकृत्यसार' नामक ग्रंथकी रचना की और श्रीमान् डूंगरपुर नरेशने अपने द्रव्य द्वारा उक्त ग्रंथको छपवाकर अमूल्य सर्व साधारणको वितरण करनेकी कृपा फरमाकर अखंड पुण्यका बंध किया है। पूज्य आचार्यश्रीके चातु-र्मासके उपलक्षमें डूंगरपुर के दिगंबर जैन समाजने लघुशांतिसुधा-सिंधु नामक ग्रंथ अपनी ओरसे प्रकाशित किया है जो आपकी सेवामें सादर भेंट किया जा रहा है। इसके अलावा इस ग्रंथकी ५०० प्रतिया डूंगरपुर समाजकी ओरसे 'अनेकान्त' मासिक पत्रके ग्राहकोंको उपहार स्वरूप भेंट दी जा रही है। इस प्रकार डूंगरपुरका चातुर्मास बहुत ही महत्वपूर्ण व चिरस्मरणीय हुआ है।

विजयलाल जैन.

—=—



[illegible]

आचार्य श्रीकुंथुसागरजी महाराज.

प्रस्तावना.

इस बीसवीं शताब्दीमें विज्ञानकी उन्नतिसे मानव समाजने सुख शांति चाही थी, किंतु बदलेमें केवल भीषण नरसंहारक युद्ध मिला, सुख शांति वीतराग धर्मके बिना मिल नहीं सकती। अशांति कलहसे संसार आज संतप्त है। अशांति कलहको सब ही मिटाना चाहते है, लेकिन वह बढती हुई अपनी चरम सीमापर पहुंच रही है। इसका कारण स्पष्ट है कि सच्चे उपायोंकी तरफ अभीतक शासन कर्ताओंका ध्यान ही नहीं पहुचा। इसलिए पूज्य दिगंबराचार्य श्री १०८ कुंथुसागरजी महाराजने अपनी ओजस्विनी भाषामें दुःखी दुनियाको एक चेतावनी दी है कि शांतिके लिए कहां भटक रहे हो वह तो तुह्मारे पास ही है। थोडेसे ही शब्दोंमें आचार्यवरने विश्व-शांतिका जो उपाय बताया है वह अनुपम और " गागरमें सागर " की कहावतको चरितार्थ करने वाला है। अर्थात् " अहिंसा, लोभका त्याग और सत्संगति " इन तीन गुणोंकी व्यापकता ही विश्वशांतिका अचूक उपाय है। विश्वशांति देरसे होवे तो भी आत्म-शांति तो इस प्रयोगसे तत्क्षण अनुभूत होने लगेगी।

यद्यपि यह आत्मा अनादि कालसे इस अशांतिमय संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। परंतु क्रोधादिक परिणति उसका स्वभाव नहीं है। उसका स्वभाव शांति है। अत एव कैसा ही जीव क्यों

न हो शांतिकी ही अपेक्षा करता है । शांतिमय जीवनमें ही आनंद मानता है । तथापि सांसारिक उद्वेगपूर्ण वातावरणसे वह मार्ग मिल नहीं पाता है । उसका मार्गप्रदर्शन इस ग्रंथसे होगा।

इस ग्रंथका अत्यंत महत्व यों है कि इस ग्रंथके रचयिता इन गुणोंके मूर्तिमान पुञ्ज है, उन्हें अपने लिए तो दुनियांकी किसी भी वस्तुकी आकांक्षा नहीं है । केवल परोपकार और विश्वकल्याण के लिए ही अपनी समस्त इच्छा और स्वार्थको बलिदान कर दिया है, संकीर्ण मतमतान्तरोंके जंजालसे जिन भद्र पुरुषों (प्राणियों) का चित्त ऊब गया है, विश्वव्यापी विराट् वीतराग धर्मकी शीतल छायाका आनंद उन भद्रोंको इस ग्रंथकी कृपासे अवश्य मिलेगा ।

विश्वोद्धार.

पूज्यश्रीका ज्ञान व वैराग्य इतना बढ गया है कि उससे असंख्य प्राणियोंका उद्धार हो रहा है । बाल्यसे ही उत्तम संगति उत्तम संस्कार, योग्य माता-पिताओंका उपदेश, सद्गुरुओंका समागम होनेसे यह मनुष्य किस उच्च आदर्श पर पहुंच जाता है एवं लोकवंद्य होता है इसके लिए आचार्यश्रीका उदाहरण पर्याप्त है । अनेक भवोंसे जिन्होंने अभ्यास पूर्वक संसारके स्वरूप का अध्ययन किया वे ही संवेग और निर्वेग भावनासे युक्त होकर लोकको भी सत्पथका प्रदर्शन करते हैं । आचार्यश्रीके जीवनमें

प्रारंभसे ही अर्थात् ब्रह्मचारी, क्षुल्लक व ऐलक सदृश श्रावकोत्तम अवस्थासे ही विश्वके उद्धार करनेकी चिंता हुई। उस समय आपने समाजमें वर्षोंसे फैले हुए कुसंस्कारोंको अपने उपदेशसे दूर किया, जो लोग स्वेच्छाचारी होकर अभक्ष्य भक्षण करते थे, संस्कार विहीन थे, धर्मकर्मसे अपरिचित थे, देवदर्शनादि नित्य क्रियावोंसे भी विमुख थे ऐसे भूले भटकोंको आपने दयार्द्र चित्त होकर रास्ता लगाया। लाखों संस्कारविहीनोंको आपने यज्ञोपवीतादि संस्कारोंसे संस्कृत किया। लाखों ही जैनेतर हिंदु मुसलमान आदि भाइयोंने आपके उपदेशसे मद्य, मांस, मधु आदि निंद्य पदार्थोंका एवं दुर्व्यसनोंका त्याग किया।

विश्वविहार.

दिगंबर अवस्थाको धारण करनेके बाद आपके ज्ञान व चारित्रमें इतनी निर्मलता आई, जिससे धर्मकी अलौकिक प्रभावना हो रही है। निर्मल चारित्रके प्रभावसे जो विशिष्ट क्षयोपशम जन्य अनुभव लोकके सामने आया तो एक दम अज्ञान अंधकार दूर हुआ। श्री परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराजके संघमें आप परमप्रभावक साधु सिद्ध हुए। आपने अपने विद्वत्ता पूर्ण सुललित सुंदर मृदु वचनोंसे थोडे ही समयमें लोकको आकर्षित किया। जनता आपके उपदेशसे मुग्ध हुई। इस प्रकार आचार्य संघके साथ अनेक प्रांतोंमें विहार किया। गत कितने ही वर्षोंसे आपश्रीका गुजरात प्रांत में विहार हो रहा है। गुजरात प्रांतका

आपके विहारसे बहुत ही सुधार हुआ। धर्मकी विशिष्ट प्रभावना हुई। आपश्रीका उक्त प्रांतमें छोटेसे छोटे बडेसे बडे ग्राम व नगर में विहार हुआ। और प्रत्येक स्थानपर पूज्यश्रीका सार्वजनिक तत्त्वोपदेश हुआ।

विश्वबंधुत्व.

इस पुण्य विहारमें गुजरातके कितने ही छोटे बडे शासक पूज्यश्रीके चरणोंके भक्त बने। सुदासना, अलुवा, पेथापुर, बलासना, माणिकपुरा, मोहनपुरा, ओरान, हिम्मतनगर, टींबा, विजयनगर आदि बहुतसे स्थानोंके शासक आपश्रीके परमभक्त है। सुदासनाके ठाकुर साहब श्री पृथ्वीसिंहजी बहादुर, युवराज कुंवर साहब रणजीतसिंहजी, लिंबोदारके ठा. सा. जगत्सिंहजी, अलुवाके ठा. सा. अर्जुनसिंहजी, माणिकपुराके ठा. सा. प्रवीणसिंहजी, पिंडरडाके ठा. सा. रणजीतसिंहजी, विजयनगरके ठा. सा. ने. ना. श्री हमीरसिंहजी बहादुर आदि पूज्यश्रीके दर्शनके लिए बहुत ही लालायित रहते हैं। एवं अपने राज्योंमें आचार्य संघका बहुत ही वैभवयुक्त स्वागत किया। एवं अपने राज्यों में आचार्यश्रीकी जयंती वैभवसे मनानेकी घोषणा की। साथ ही उक्त दिनको अहिंसा-दिनके रूपसे मनानेका फरमान निकालकर उस दिन सरकारी छुट्टीकी घोषणा की। बडोदा राज्यमें संघका विशिष्ट स्वागत होकर राजकीय न्यायमंदिरमें हजारों जनता व खास दिवान साहबकी उपस्थितिमें पूज्यश्रीका विश्वधर्मपर उपदेश हुआ। यह बडोदा राज्यके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है।

ग्रंथनिर्माण.

इसी प्रकार पूज्यश्रीने अपनी विद्वत्ता द्वारा जनताका स्थायी उद्धार हो इस हेतुसे आजतक अनेक ग्रंथोंका निर्माण किया है । पूज्यवर्यने अभीतक उत्तमोत्तम तीसो ग्रंथोंका निर्माण किया है । वे ग्रंथ इतने लोकप्रिय हुए है कि आचार्यश्रीके भक्तोंने उनको हजारोंकी संख्यामें प्रकाशित कर उनका प्रचार किया है । जैन जैनेतर सभी लोग बहुत दिलचस्पीसे उन ग्रंथोंका स्वाध्याय करते है।

चातुर्मास व तीर्थोद्धार.

पूज्यश्रीका चातुर्मास जहा भी हुआ है वहा अभूतपूर्व प्रभावना हुई है । आपके चातुर्मासका ही फल है कि गुजरातके कई तीर्थोका उद्धार हुआ है । तारंगा क्षेत्रमें विशाल मानस्तंभ व प्रतिष्ठा महोत्सव, इसी प्रकार पावागढ क्षेत्रमें विशाल मानस्तभ व प्रतिष्ठा पूज्यश्रीके चातुर्मासके फलस्वरूप हुए हैं। इसी प्रकार जहेर, ईडर वगैरह स्थानके चातुर्मासमें भी बहुतसे महत्वपूर्ण कार्य हुए है । अनेक स्थानमें वर्षोसे आया हुआ परस्परका वैषम्य पूज्यश्रीके उपदेशसे दूर हुआ । स्थान स्थान पर संगठन होकर समाज बहुत प्रेमसे कार्य करती है । पूज्यश्रीके वचनोंमें जादू जैसा प्रभाव है। उनके सुंदर मिष्ट हितमय वचनोंसे पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाता है, सामान्य मनुष्योंकी बात ही क्या है ? इसलिए सर्वत्र प्रेमका संचार होता है ।

विश्वकल्याण.

इस प्रकार पूज्यश्रीके दिव्य विहारसे भव्योंका महदुपकार

हो रहा है। अनेक साधु संत पूज्यश्रीके संघमें रहकर आत्म कल्याण करनेके लिए लालायित रहते है। इस समय पूज्यसंघका चातुर्मास डुंगरपुर मेवाडकी पुण्यभूमिपर हो रहा है। संघमें इस समय अनेक साधु, संत, सत्पुरुष मौजूद है जिनमें श्री परमपूज्य मुनिराज आदिसागरजी महाराज, मुनिराज अजितसागरजी महाराज, आर्यिका धर्ममतीजी, आर्यिका विमलमतीजी, क्षुल्लक सीगंधरजी, क्षु. ज्ञानमतीजी, ब्र. विद्याधरजी, ब्र. जिनदासजी, ब्र. विमलदासजी, ब्र. रिषभदासजी, ब्र. शांतमतीजी, ब्र.अजितमतीजी आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय है।

पूज्यश्रीके दिव्य विहारसे इसी प्रकार लोकातिशायी प्रभावना हो यही कामना है।

अनुवादक.

इस ग्रंथका अनुवाद श्रीमान् पं. गणेशीलालजी न्यायतीर्थ ऋषभदेवने गुरुभक्तिसे किया है। एवं अंग्रेजी अनुवाद श्रीमान् अ० श्री० मूळकूटकर M. A. B T D. Pe. सोलापुरने धर्मप्रेमसे किया है। एतदर्थ उक्त दोनो विद्वानोंके इस साहित्य–सेवाके लिए हम आभारी हैं। इसके अलावा जिन सज्जनोंने इसके प्रकाशनमें सहायता दी है उनके भी हम कृतज्ञ है।

विनीत—

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

ऑ. मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला.



श्रीपरमपूज्य, तपोनिधि, विश्ववंद्य,

आचार्यप्रवर कुंथुसागर-विरचित

लघुशांतिसुधासिंधुः ।

शांतिरसरसिकानां, मुमुक्षूणां हिताय परमकारुणिकः आचार्य-पुंगवः ग्रंथारंभे, उपकारस्मरणार्थं, शिष्टाचारपरिपालनार्थं, नास्तिकतापरिहारार्थं, निर्विघ्नग्रंथपरिसमाप्त्यर्थं च स्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मंगलाचरणमातनुते ॥

उपकारस्मरण, कृतज्ञताप्रकाश, शिष्टाचारका पालन, नास्तिकतापरिहार, पवित्रपरंपरापालन और निर्विघ्न ग्रंथकी पूर्णताकी कामनासे ग्रंथकार सबसे पहले मंगलाचरण करते हैं ।

The extremely kind, great and venerable preceptor recites the auspicious prayer at the beginning of the book in the form of respectful obeisance to the desired god for the welfare of persons desiring " Moksha " (Salvation) and for those who find pleasure in the flavour of peace

to remember the obligations, to acknowledge gratitude, to observe good manners, to remove atheism and for the purpose of completing the book without any calamity.

श्रीदं नत्वा जिनं भक्त्या, पूर्वाचार्यान् सुखप्रदान् ।
शान्त्यै शांतिसुधर्मौ च, दीक्षाशिक्षावरप्रदौ ॥
लघुशांतिसुधासिंधुर्ग्रंथोऽयं सुखशांतिदः ।
लिख्यते स्वात्मतृप्तेन, कुन्थुसागरसूरिणा ॥२॥

पञ्जिका—श्रियं मुक्तिलक्ष्मीं ददाति वितनुते इति श्रीदः तं मुक्तिलक्ष्मीदायकं, जयति रागादीनिति जिनः तं जिनेन्द्रं, सुखदायकान् स्वेष्टसाधकान् पूर्वाचार्यान् समंतभद्रादिपूर्वाचार्यान्, शान्त्यै, आत्मतुष्ट्यर्थं, दीक्षाशिक्षाप्रदायकौ शांतिश्च सुधर्मश्च तौ इत्येतन्नामानौ गुरुवर्यौ, नत्वा प्रणम्य, अयं, प्रस्तुतः ग्रंथः, सुखं च शान्तिं च ददातीत्येवंभूतः " लघुशांतिसुधासिंधुः " इति—अन्वर्थनामधेयः, स्वात्मतृप्तेन निजात्मरसरसिकेन, श्रीकुन्थुसागर इति नाम्ना प्रसिद्धेन सूरिणा आचार्येण लिख्यते विरच्यते ॥

अर्थ—समवसरणादि बहिरंगलक्ष्मी और अनंतज्ञानादि अंतरंगलक्ष्मीको देनेवाले, कषायविजयी जिनेंद्र भगवान्को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं।सच्चा सुख देनेवाले समंतभद्र आदि पूर्वाचार्यों एवं शांति प्राप्तिके लिए दीक्षागुरु

श्रीआचार्य शांतिसागरजी और शिक्षागुरु श्री सुधर्मसागरजी महाराजको नमस्कार करके सुख और शांतिका देनेवाला यह "लघुशांतिसुधासिंधु" नामका ग्रंथ मैं (श्री आचार्य कुंथुसागरजी महाराज) आत्म-रसका रसिक तृप्त होकर लिखता हूं।

विशेषार्थ—यह ग्रंथ शब्दोंकी अपेक्षा तो छोटा है लेकिन अर्थसे महान् है, और मनन करनेवालोंको शांतिसुखका दातार है। इसलिए अपने इष्ट परमेष्ठिगणको नमस्कार करके, वीतराग होकर भी परम तपोधन गुरु (आचार्य श्री कुंथुसागरजी) स्वयं तृप्त होते हुए भी इस ग्रंथको रचते हैं। महापुरुषोंका नामोच्चारण करना ही मंगलाचरण है। महापुरुष वह है जिसने सम्पूर्ण कर्मोंको जीतकर आत्मिक स्वतन्त्रताको प्राप्त कर लिया है। उसीको नित्य निरंजन देव कहते हैं। इनको नमस्कार करनेका उद्देश्य केवल स्वपरकल्याणकी भावना है, इस लिये उस पवित्र परमात्माका नाम चाहे कुछ भी हो अर्थात्—जिन, बुद्ध, विष्णु आदि नाममें कोई विवाद नहीं किन्तु गुणोंकी पूर्णता परमावश्यक है। सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी ही परमात्मा होता है।

कोई यह प्रश्न करे कि ग्रंथकारने जिनदेवको क्यों नमस्कार किया? क्या जैन धर्मका प्रचार करना ही इस ग्रंथका उद्देश है। इसका उत्तर है कि—जो, रागद्वेष आदिको

जीते सो जिन है। रागद्वेष आदिको जीतनेसे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। इसलिये उसी आत्मधर्मको समझाकर जगतमें सुखशान्तिका संचार करना, यही जिनदेवको नमस्कार करनेका प्रयोजन है। क्यों कि ग्रंथकार स्वयं सब परिग्रहको छोडकर उसी आत्मधर्मकी साधना में लवलीन हैं।

Having bowed to Jina (God) the giver of prosperity, the previous preceptors who give bliss "SHANTI" and "SUDHARMA" givers of the boons of consecration and education for pacification, this book named "LAGHU SHANTI SUDHA SINDHU" giving bliss and peace is written by the preceptor "KUNTHUSAGAR" who is gratified in his soul. (1-2)

प्रश्न—जीवानां मरणात्पश्चात्, पुनर्जन्म भवेन्न वा।

अर्थ—मरण होजानेपर जीवोंका फिर जन्म होता है या नहीं।

QUESTION—Is the being reborn after its death?

उत्तर— कस्यापि जीवस्य कदापि नाशो,
भावी न भूतो भवतीह लोके।
को केवलं स्यात्परिवर्तनं हि,
दिनादिरात्रेरिव सर्वसृष्टेः ॥ ३ ॥

अर्थ—किसी भी जीवका नाश नहीं होता, और कभी न हुवा है, न कभी होगा, जैसे दिनके पश्चात् रात और

फिर दिनका उदय होजाता है, उसी प्रकार इस संसारमें सारी सृष्टिका केवल परिवर्तन होता है ।

विशेषार्थ—अनेक पढे लिखे व्यक्तियोंको भी हृदयमें यह शंका शूलकी भांति चुभती रहती है कि मरनेके बाद जीवका क्या होता है ? या हमारा क्या हाल होगा ? जीव का नाश होता है क्या ? श्री गुरु फरमाते हैं, हे भाई ! ऐसी शंका व्यर्थ है, क्यों कि जीव तो अमर है, इसका नाश तो हो ही नहीं सकता है । हां, और द्रव्योंकी तरह इस द्रव्यकी भी पर्याय बदलती जाती है। इसलिए किसी भी बुद्धिमानको मृत्यु डरकी चीज नहीं है । क्यों कि सत्कर्म का फल, बुरी पर्यायको हटाकर अच्छी पर्यायमें ही तो भोगा जा सकता है । जैसे कि फटे, पुराने कपडोंको फेंक कर ही हम नये कपडोंसे लाभ उठाते हैं। इससे साबित होता है कि जीव मरता नहीं, किंतु अविवेकी शरीरके बदलनेको ही जीवकी मृत्यु मानते हैं, और व्यर्थ ही डरते हैं । इसलिए श्रीगुरु सावधान करते हैं ।

ANSWER—No being was destroyed [in the past], nor is destroyed nor will be destroyed (in future) Just as a night follows a day and a day follows a night, so also the world is being changed only. (3)

ज्ञात्वेति मृत्योश्च भयं प्रमुच्य,
वियोगदुःखं हि तथा परेषाम् ।

स्याच्छुद्धचिद्रूपपदाधिकारी,
स्वस्थस्तवात्मापि भवेत्प्रपूज्यः ॥ ४ ॥

पञ्जिका— इति पूर्वोक्तप्रकारेण, ज्ञात्वा-विज्ञाय, मृत्योः मरणस्य भयं भीतिं, तथा परेषाम् अन्येषाम् इष्टमित्रादीनाम्, वियोग दुःखं वियोगजन्यमनुतापं, प्रमुच्य त्यक्त्वा, शुद्धश्चासौ चिद्रूपस्तस्य पदस्याधिकारी, शुद्धस्वात्माधीनः, स्यात् भवेत्, अपि च, एतत्कृते तव तावकः, आत्मा जीवः स्वस्थ स्वात्मनि स्थितः,प्रपूज्य प्रकर्षेण पूज्यः, पूजार्हः, भवेत् संजायेत, नात्र संशयः, कार्यः ॥

अर्थ—ऐसा (द्रव्यपर्याय दृष्टिको) जानकर, मृत्युका भय और इष्टजनोंके वियोगजन्य दुःखको छोडकर शुद्धचैतन्य पदके अधिकारी बनो, जिससे कि तुम्हारी आत्मा स्वस्थ होकर पूज्य बन जावे ।

Having known this and abandoning the fear of death and the grief of separation [of relatives], be the master of your pure soul. By this your soul will be pacified and revered (4)

विशेषार्थ— प्रत्यक्षपरोक्षप्रमाणसे, युक्ति तथा स्वानुभवसे यह बात सिद्ध है कि विश्वमें किसी भी जीवका कभी भी समूल नाश न हुआ है न होगा, केवल शुभाशुभकारणोंसे वेष अर्थात् शरीर बदलता है। जैसे बहुत हिंसा करनेवाला अपनी मनुष्यपर्यायको छोडकर

नरकमें घृणितपर्यायमें उत्पन्न होता है। मायाचार, कुटिलता ईर्ष्यासे प्राणी, चरिन्दे, परिन्दे आदिकी तिर्यञ्चपर्यायको ग्रहण करता है। मिश्रभावोंसे अर्थात् दया, दान, भक्ति आदि कुछ कोमल, तथा आरंभ परिग्रह आदिके परिवर्तन युक्तभावोंसे मनुष्य मरके मनुष्य पर्यायमें ही उत्पन्न होता है। तथा परिणामोंमें भी तीव्रता मन्दता आदिसे मनुष्योंमें भी सुखी, दुखी, भाग्य, दुर्भाग्य, विद्वान् मूर्ख, योग्य अयोग्य इत्यादि पने की तरतमता अवश्य होती है। दान पूजन, परोपकार, विश्वप्रेम, लोकहित, सहिष्णुता, धैर्य, इत्यादि गुणोंको निरंतर धारण करनेवाला मनुष्य, देव-पर्यायमें उत्पन्न होता है।

सम्पूर्ण शुभाशुभविकल्पों तथा विवेक पूर्वक अंतरंग बहिरंग परिग्रहको छोडकर शुद्धचिद्रूप होनेकी भावना से जो आत्मा आत्माको आत्माके ही द्वारा आत्माके लिये, आत्मामें ही, देखता जानता तथा निमग्न हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

मुक्त होनेपर भी जीवका व्यक्तित्व कायम रहता है, क्यों कि सर्व सिद्ध गुणोंकी समानतासे एकरूप हैं तथापि व्यक्तित्वकी अपेक्षा भिन्न २ हैं। जैसे कि समुद्रका जल एक ही दिखता है, किन्तु उसके आनन्तानन्त पर-माणु सब परस्पर भिन्न हैं।

कोई कहते हैं कि सब जीव एक परमात्माके ही

अंश हैं, किन्तु यह बात युक्ति और स्वानुभवके विरुद्ध ठहरती है। यदि परमात्माके ही सब जीव अंश हैं तो परमात्माके सुखी होनेसे सब प्राणियोंको सुखी होना चाहिये। किन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता, जीवोंके रुदन आदि दुखोंसे परमात्माको भी रोना पड़ेगा। जीव मायाचारी आदि करते है तो परमात्मामें भी मायाचारीका भाव होता होगा। क्यों कि जैसे शरीरके एक अंगमें बिच्छु काटता है, उसकी वेदना सर्वांगमें प्रतीत होती है, इससे ही शरीरके सब अंगोमें एक ही जीवकी व्यापकताका बोध होता है। सब जीवोंमें ऐसे किसी एक परमात्माकी व्यापकताका बोध नहीं होता। इससे निश्चय होता है कि सब जीव अपने २ कर्मोंके स्वयं भोक्ता और अविनाशी हैं।

जो पहिले नर था वही नारकी हुआ, नर ही तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि होता है, वही जीव कर्मक्षय करके नित्य निरंजन सिद्ध होगया। इससे साबित होता है कि जीवका नाश नहीं होता, केवल पर्यायका परिवर्तन होता है। जैसे—कि—सूर्यके क्षेत्रान्तरमें जानेसे दिन ही रात और रात्रि ही दिन रूपमें परिणत होती है, अथवा दीपकसे प्रकाश और उसके हटा लेनेपर पुनः तमका प्रभाव हो जाता है। यही व्यवस्था प्रत्येक चेतन अचेतनकी पर्याय परिवर्तनमें भी लागू होती है। दृष्टांतके लिये एक पत्ता

अभी हरा है, पकने पर पीला हो जाता है, यही भूमिपर पडनेपर मिट्टीमें मिल जाता है, पुनः जल आदिके संयोगसे मिट्टी हरित वनस्पतिरूपमें परिणत होजाती है, इससे मालुम होता है कि जीवका ही नहीं किन्तु सब चीजोंका पुनर्जन्म होता है, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि सब द्रव्य चेतन ही हैं। जहां चेतनका संबंध है उस वस्तुमे घटना बढना दोनों होते है। जैसे ज्वर चिन्ता आदि से मनुष्यका शरीर क्षीण होजाता है नीरोग होने से पुनः पुष्ट होजाता है, अजीव द्रव्य में यह बात नहीं है, अजीव पिंड तो घटता ही जाता है। जैसे मृत शरीर, पाषाण आदि। निमित्त, नैमित्तिकरूपसे क्रिया सबमें है। किन्तु क्रियामात्रसे किसी चीजको सजीव नहीं कहते है। सजीवपना तो चैतन्य अर्थात् सुख दुःखादिके अनुभव से संबद्ध है।

यदि कोई ऐसा कहे कि पुनर्जन्म या पाप पुण्य आदि कुछ नहीं है किंतु पक्षपाती मनुष्योंने ही किसीको धनी किसीको दरिद्री बना दिया है। इसलिए पक्षपात छोडकर सबको समान बना देना चाहिये। ऐसे भाइयोंसे कहना है कि—पक्षपात छोडना चाहिये यह तो अच्छी बात है। वीतराग प्रभुका तो यही संदेश है कि सम्पूर्ण जगतमें समता अर्थात् सुख हो। परन्तु तुम्हारे कहने मात्रसे पुनर्जन्म या पुण्य-पापका निषेध होता नहीं।

गर्भसे ही सब साधन सामग्री समान होनेपर भी एक निर्बल, एक सबल, एक विवेकी, एक अविवेकी, एक रोगी क्यों पैदा होता है ? इनमें साम्य करनेका क्या उपाय होगा ? अथवा आप कहें कि हमारे साधन मिलानेमें त्रुटि रहनेसे ऐसी विषमता हुई तो हम पूछते हैं साधनोंमें त्रुटि क्यों रही ? जब कि साम्यके हजारों साधन और उद्योग करनेपर भी अंध पंगु, रूपवान् कुरूपवान् इत्यादिमें साम्य नहीं होता तो इससे मालूम होता है कि पूर्वकृत शुभाशुभ है और वह अपरिहार्य है, उसका शुभाशुभ फल भोगना ही पडेगा ।

इस प्रकार प्रमाण युक्ति और अनुभवसे साबित है कि पुनर्जन्म अबाधित है ।

४ इसलिए-मृत्यु अर्थात् वर्तमान पर्यायके वियोगमें जो तुम दुःखका अनुभव करते हो यह ठीक नहीं है, क्यों कि यह तो प्रत्यक्ष ही है कि अच्छी वस्तुको पानेकेलिए जीर्ण शीर्ण वस्तुका त्याग अनिवार्य है और आवश्यक है। यदि तुमने सत्कर्म किये हैं तो अवश्य उत्तम देह प्राप्त होगी, इस देहसे ही ऐसा मोह क्यों ? अतएव मृत्युका डर व्यर्थ और अज्ञानजन्य है ।

कुछ लोगोंका खयाल है, जीवको ईश्वर ही रचता है और नष्ट करता है, यह खयाल बिलकुल विवेक और युक्तिशून्य है—

श्रीमद् भगवद्गीतामें भी कहा है कि—

कर्तृत्वं न च कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगः स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्यचित्पापं, न चैवं सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

अर्थ——ईश्वर लोकका कर्ता नहीं, यह तो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, तथा वह किसीके पुण्य, पापको भी ग्रहण नहीं करता है । अज्ञानसे ज्ञान ढका हुआ है, इसीसे प्राणी मोहित हो रहे हैं। ईश्वर किसीका कर्ता हर्ता नहीं। ऊपरके कथनसे साफ मालुम हो जाता है, कि जीवको ईश्वर नहीं बनाता बिगाडता। यह जैनधर्मका ही नहीं, सर्वका मान्य सिद्धान्त है ।

२ प्रश्न—

कोऽस्ति प्राणिमात्राणां धर्मो मे सिद्धये वद् ।

हे गुरो ! प्राणिमात्राणां धर्मः कः मे सिद्धये वद ।

हे गुरुदेव ! प्राणिमात्रका धर्म क्या है सो कहिये, जिससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो ।

QUESTION— Oh ! venerable preceptor, please tell me for my final emancipation, about the religion [faith] (to be observeded) of all beings.

धर्मोऽस्ति प्राणिमात्राणामहिंसैवाभयप्रदः।
अतः सद्विश्वशान्त्यै स पालनीयो मुदाऽखिलैः॥५॥

पञ्जिका—प्राणिमात्राणां–सर्वेषाम् देहिना, अभयं प्रददातीत्येवं शीलः, अहिंसा एव धर्मोऽस्ति अत एव समीचीना चासौ विश्वे शान्तिस्तस्यै स उक्तलक्षणो धर्मः अखिलैः सर्वेरेव जन्तुजातैः मुदा हर्षातिरेकेन पालनीयः रक्षणीयः।

अर्थ—सब प्राणियोंको अभय देनेवाला एक अहिंसा ही धर्म है, इसी से विश्वमें सच्ची शांति हो सकती है, इसको हर्षसे सबको पालना चाहिये।

विशेषार्थ—सब प्राणी अपने ऊपर आफत आने से डरते हैं और अभय चाहते हैं, लेकिन अभय तभी प्राप्त हो सकती है जब कि वहां अहिंसा वर्तमान हो, इससे साबित होता है कि अहिंसा ही सच्चा और एक मात्र धर्म है। जहां ये है वहां अवश्य ही शान्ति और सुख है, किसी को यह शंका हो कि दुनियां में तो अनेक धर्म देखे और सुने जाते हैं। ये क्या हैं? उसको चित्त स्थिर कर यकीन करना चाहिये कि ये सब मत-मतान्तर उस अहिंसा रूप धर्म (ध्येय) को न समझकर परिस्थितिवश बने हुए मार्ग है। वस्तुतः विश्वधर्म एक ही अर्थात् जैनधर्म (अहिंसा धर्म) ही है। और विदेह क्षेत्रमें यह शाश्वत सर्वमान्य रूप रहता है। अज्ञानसे

जिन्होंने इस विश्व धर्मको नहीं समझा वे ही विश्व युद्ध या कलहके अशान्ति के जुम्मेवार हैं। इसलिये प्रत्येक सुखाभिलाषीको स्वपर हितकेलिये इसका अवलम्बन करना चाहिये ।

ANSWER–Only NON-KILLING (Ahimsa) the giver of safety, is the religion of all beings. Therefore, it should be practised with joy by all for the sake of peace in the world. (5)

प्रश्न ३–अहिंसाधर्मचिन्हं किं वर्तते मे गुरो ! वद् ।

हे गुरो ! मे वद कथय अहिंसा धर्मस्य चिह्नं किं वर्तते ।

हे गुरुदेव ! मुझे बताइये उस अहिंसाधर्मका चिह्न क्या है ?

QUESTION:— Oh ! preceptor, what is the sign of the religion "Non-killing" ? Please tell me

स्वात्मवत् प्राणिमात्राणां, प्रयत्नात्परिरक्षणम् ।
अहिंसा परमो धर्मः लोकेस्मिन् शांतिदायकः ॥६॥

पञ्जिका—स्वात्मवत्–स्वात्मनः यथा, तथा प्राणिमात्राणां–सर्वेषाम् सूक्ष्मस्थूलजन्तूना, प्रयत्नात्–अप्रमादेन, परिरक्षण–अव्यवरोपणम् स एव अहिंसा परमो धर्मः इति विश्रुतः, स धर्मः शांतिदायकः लोके: विश्वे अहिंसा धर्मः स्यात् भवेत्, नापरः ।

अर्थ—अपनी आत्माकी भांति प्राणीमात्रकी चाहे वे सूक्ष्म हों वा स्थूल, प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना वही सज्ज-

नोंका प्यारा, शांतिको देनेवाला समस्त लोकमें प्रसिद्ध " अहिंसा धर्म " है, दूसरा नहीं।

विशेषार्थ–दुःखमें पडे हुए प्राणियोंकी हरतरह मदद करना उनको सुखी बनाना यही अहिंसा धर्मका चिन्ह है। धर्मके नामपर किसीको सताना या छलसे या जबर्दस्ती किसी धर्मायतन पर कब्जा जमा लेना, या धर्मके नामपर मार पीट करना यह सब तो घोर आत्मपतन है। धर्मके नामपर पाप कमाना है। जैसे—मैला कपडा कीचड या गटरके पानीसे शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार स्वार्थबुद्धिके लिए किसीको सताना या जुल्म करनेसे आत्मा शुद्ध न होगी। आत्मशुद्धिके लिए तो देवपूजा, गुरुसेवा, विश्व-सेवा, दान, क्षमा, शील आदि धर्मकार्य करने चाहिये, अन्यथा विश्वको या आत्माको धोका देनेसे आत्मपतन ही होगा।

ANSWER—Like the soul all the beings should be protected with efforts. This alone is the religion " Non-killing " loved by the good and which gives pacification in the world. (6)

प्रश्न–स्पष्टार्थं कुरुताद् धीमन्! धर्मस्यास्य विशेषतः।

अर्थ—हे विद्वर! इस अहिंसा धर्मका विशेषरूपसे खुलासा कीजिये।

QUESTION—Oh! learned one, please explain this religion in detail.

रोचते स्वात्मने यद्यज्ज्ञेयं तत्तत्परात्मने ।
अतएव परेभ्योऽपि, देयं वस्तु सुखप्रदम् ॥७॥
सर्वजीवसमत्वान्न कार्यं कस्यापि पक्षकम् ।
सर्वविश्वसुखी यस्मात्सदा स्यान्मंगलं भुवि ॥८॥

पञ्जिका---यद् वस्तु स्वात्मने स्वस्मै रोचते तदेव (समीचीन स्यात्) परात्मने परस्मै, अपि रोचते, इति ज्ञेयं । अतएव परेभ्य-अन्येभ्योऽपि सुखप्रदं, सुखं हितं, प्रकर्षेण ददातीत्येवंभूतं वस्तु, द्रव्यं देयम् । सर्वे च ते जीवा, तेषु समत्वात् कस्यापि, पक्षकम् पक्षपातः (रागादिना) न कार्यः, यस्मात्--यतश्च, सर्व-कृत्स्नं, विश्वं-जगत् सुखि, स्यात् भवेत्, भुवि भूमण्डले च मंगलं कल्याणं, स्यात् ।

अर्थ---जो वस्तु अपनेलिए रुचिकर अर्थात् हित-कारी है, वही दूसरोंको भी जरूरी है ऐसा जानना, इसलिये हमेशा दूसरोंको भी सुखदायक वस्तु देनी चाहिये और सब जीव समान हैं, इसलिये रागद्वेषसे किसीका पक्षपात नहीं करना चाहिये । तभी सर्व जगत् सुखी और भूमण्डलमें आनन्द मंगल हो सकते हैं ।

विशेषार्थ---कोई भी यह नहीं चाहता, कि मैं सताया जाउं, ठगा या छला जाऊं । इसलिये हमको सबके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, जैसा कि हम अपने साथ दूसरोंसे चाहते हैं । सब जीवोंको अपने २ प्राण बड़े

प्यारे लगते हैं, इसलिए सब समान हैं, किसीके भी प्राणोंको कमकीमती समझना पक्षपात है पाप है। इसलिए किसी भी जीवको किसी हेतुसे मारना सताना ठीक नहीं। सबके अहिंसामय परिणाम हों इसीसे विश्वमें और इस भूमण्डलपर सर्वत्र सुखशान्तिका साम्राज्य हो सकता है।

केवल मुखसे अहिंसा, अहिंसा कहने से कोई लाभ न होगा, किन्तु इसको कार्यरूपमें परिणत करनेसे ही अपना भला होगा। आत्मा वीर और निर्भय बनेगा। (रोगीको छोडकर) " जो वस्तु वास्तवमें उत्तम है वही सबको प्रायः उत्तम लगती है " इसलिये पक्ष छोडकर देश, विदेशमें स्वपरके कल्याणार्थ दूसरोंको हमेशा उत्तम उत्तम वस्तु उच्च आचार विचार और सुख देना चाहिये। विश्वके सब प्राणी समान हैं इसलिये किसीके साथ पक्षपात नहीं करना चाहिये, इसीसे भूमण्डलमें सर्वत्र आनन्द मंगल और शान्ति होगी।

ANSWER—It should be known that the thing which is loved by us is also loved by others. So a thing giving pleasure deserves to be given to others. [7]

As all beings are equal, partiality should not be made with anybody. For then all the world will be happy and bliss will always exist on the earth. [8]

पुनरपि विशेषार्थः क्रियते सिद्धये नृणाम् ॥

पञ्जिका—उक्तस्यापि पुनः, विशेषेण अर्थः क्रियते, नृणाम् मनुष्याणाम् यतः सिद्धिः सुखशान्तिलाभः भवेत् ।

अर्थ—ऊपर कही बातोंका और भी खुलासा करते हैं जिससे मनुष्योंको सिद्धि अर्थात् सुख शान्ति मिले ।

It is again explained clearly for the welfare of people.

आरम्भोद्योगजा हिंसा, वा संकल्पविरोधजा ।
यावन्न त्यज्यते पूर्णोऽहिंसा धर्मः भवेन्न कौ ॥९
शक्नोति श्रावकस्त्यक्तुं, नारंभोद्योगजां यदि ।
विरोधजां तथावश्यं, शक्तः संकल्पजां सदा ॥१०
पूर्वोक्तां सर्वहिंसां हि, त्यक्त्वा वाक्कायचेतसा ।
भवेयुः साधवः स्वस्थाः, आशीरस्ति गुरोरिति॥११

पञ्जिका—आरंभे, उद्योगे च जाता, एवंभूता हिंसा, प्राणिपीडनं तथा संकल्पेन विरोधेन च जाता, हिंसा यावत् न त्यज्यते परिह्रियते तावत् कौ क्षितितले पूर्णः अहिंसा धर्मो न भवेत् । यदि श्रावकः अणुव्रती, आरंभे उद्योगे च भवाम् हिंसा त्यक्तुं परिहर्तुं न शक्नोति, तु विरोधसंभवा तथा संकल्पसंभवां हिंसां सदा, त्यक्तुं शक्तः समर्थोऽस्ति । पूर्वोक्ता—उपरि निर्दिष्टाम् सर्वविधां हिंसा, वाक्कायचेतसा त्रिभिः योगैः, त्यक्त्वा, हि निश्चयेन,

साधवः महाव्रतिनः, स्वस्था-स्वात्मनि स्थिता, सुखपूर्णाः, वा भवेयुः स्युरिति गुरोः परमकारुणिकस्य आशीरस्ति ।

अर्थ---आरंभी, उद्योगी, संकल्पी और विरोधी चारों प्रकारकी हिंसा जबतक न छोडी जावे तबतक पूर्ण अहिंसा धर्म नहीं होता, यदि अणुव्रती, गृहस्थ, आरंभी और उद्योगिनी हिंसाको न छोड सके तो विरोधी, तथा संकल्पी हिंसाको अवश्य छोडना चाहिये। ऊपर कही सर्व प्रकारकी हिंसाको मन, वचन, कायसे त्याग कर साधुगण स्वस्थ अर्थात् सच्चे सुखी होवें, ऐसा परम दयालु गुरूका शुभाशीर्वाद है।

विशेषार्थ---दुनियां में भोजन आदि आरंभ कार्य करना अनिवार्य है। इसलिये साधारणतः असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प, वाणिज्य, आदि उद्योग करने ही पडते हैं। विरोधी हिंसा भी परिस्थिति वश कभी २ अनिवार्य हो जाती है। जैसे--बालक--हित मित भाषणसे या इच्छित वस्तु देनेपर भी पढने नहीं जावें, खेलकूदमें ही समय बर्बाद करे तो हितैषी पिता उसको जबर्दस्ती भी स्कूलमें भेजता है। इसी तरह कोई चोरी करे, व्यभिचार करे, निर्बलको सतावे या विश्वशान्तिमें बाधा उपस्थित करे, ऐसे प्राणीको भी हृदयसे बन्धु समझकर उसके और विश्व कल्याणके लिए जैसे बने तैसे रोकना चाहिये। इस विरोधमें हिंसा तो संभव है किन्तु वह अहिंसा सरीखी ही

है। इस प्रकार आरंभी विरोधी और उद्योगी ये तीन हिंसा तो साधारण गृहस्थोंसे संभव हैं। परन्तु संकल्पी हिंसा तो प्राण जाते भी नहीं करनी चाहिये, इसका खुलासा यों है—किसी देवी देवताके नामपर बकरा, भैंसा आदि किसी जीवकी बलि देना, धर्मके नामपर परस्परमें झगडा करना, गुरु या धर्मके नामपर अत्याचार अनाचार करना ये सब संकल्पी हिंसा है, इसका तो सबको सर्वथा त्याग करना चाहिये।

इस प्रकार विश्व कल्याणके लिए हरएक प्राणीको यथाशक्ति आरंभी, विरोधी और उद्योगी हिंसाको भी छोडकर, हिंसासे सर्वथा निवृत्त होनेका उपाय करते हुए चिदानंदका रसास्वाद करना चाहिये।

As long as "Casual" (आरंभी), "Industrial" [उद्योगी] "Intentional [संकल्पी] and "Contradictory" (विरोधी) killing is not abandoned, there does not exit tne 'Non-killing 'religion'. [9]

If a person observing the religious rules (श्रावक) is not able to abandon the 'Casual' and 'Industrial' killing, he must at least leave off the "Intentional" and 'Contradictory' killing. [10]

The sages should become really happy by abandoning the above-said all kinds of killing by their speech, body and mind. This is the blessing of the preceptor. [11]

प्रश्न—सद्विश्वशान्त्युपायः को विद्यते मे गुरो ! वद ।

अर्थ—हे गुरुदेव ! सच्ची विश्वशान्ति का उपाय क्या है सो बताइये ?

QUESTION—Oh ! preceptor ! please tell me what is the remedy of securing real peace in the world ?

नानामतविधिं त्यक्त्वा ह्यहिंसाधर्मशिक्षणम् ।
देयं शं प्राणिमात्रेभ्यः, स्यात्कौ शान्तिर्यतःसदा॥
वा स्वात्मनिन्दनाद्भक्त्या, परस्तोत्रेण वा सदा ।
स्वगुणाच्छादनात्कीर्तिः, परेषां गुणवर्णनात् ॥१३॥

पञ्जिका—नानामतानां विधिं-परस्परभिन्नानेकमतभेदं, त्यक्त्वा, विमुच्य, प्राणिमात्रेभ्यः—सर्वभूतेभ्यः, अहिंसाधर्मशिक्षणं, शं—सुख च देयम्, यतः यस्मात्—कौ—पृथिव्यां सदा, शान्तिः स्यात् वा—अथवा, स्वात्मनः—स्वस्य, निन्दनात्, अन्येषाम्—स्तोत्रेण पुण्यगुणोत्कीर्तनात्, स्वगुणानां आच्छादनात्, परेषाम् गुणानाञ्च वर्णनात् कीर्तिः शान्तिश्चावश्यं भाविनीत्यत्र न संशयः कार्यः ।

अर्थ—नाना मतोंके भिन्न २ विधि विधानको छोड़कर प्राणीमात्रको, अहिंसा धर्मका शिक्षण और सुख देना चाहिये । तथा आत्मनिंदा और परप्रशंसा, अपने गुणोंका आच्छादन और दूसरे के गुणोंका प्रकाशन भी शान्तिका परम पवित्र साधन है । और सच्ची कीर्तिका उपाय है ।

विशेषार्थ—दुनियांमें बाह्य में अनेक मतवाद हैं, उनका बाह्य क्रियाकांड भी भिन्न २ दिखता है। लेकिन अन्तरंग में उन सबके अहिंसा की ही चाह, और आराधना है। अतः सबके अन्तस्तत्वको प्रगट करने के लिये, यदि विश्वकी सम्पूर्ण शिक्षा संस्थाओं में और सम्पूर्ण धर्मोंके प्लेटफार्म से यदि एक मात्र अहिंसा तत्व और सब प्राणियोंको सुख देनेकी शिक्षा दी जावे, तो फिर दुनियांसे लाखों मनुष्यों तक को नष्ट करनेवाली कलह और अशान्तिका अन्त हो जावे। ईर्ष्या भी अशान्तिका एक जबर्दस्त कारण है, और ये ज्यादातर पैदा होती है, अपनी बड़ाई अर्थात् अपने आपको बड़ा और दूसरों को छोटा मानने से। इसलिये कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा और विशेषता सम्पन्न हो जावे, उसको चाहिये कि अपने दोषोंको और दूसरे के गुणोंको देखे। अपनी निन्दा करे, और दूसरे के गुणोंकी प्रशंसा और प्रकाश करे। यह तो सोचना भी नहीं चाहिये कि यदि हम आप ही अपने गुणोंको न फैलावेंगे, तो हमारी मान्यता कैसे होगी। क्यों कि गुणों में तो स्वयं ऐसा आकर्षण है कि दुनिया स्वयं उनकी ओर आकृष्ट होजाती है और बिना कहे ही उनको सब जगह फैलानेका उद्योग करती है तभी गुणवानकी सच्ची कीर्ति होती है, इससे विश्वशान्तिमें बड़ी मदद पहुंचती है।

विश्वशांतिका उपाय कहिये अथवा अहिंसा धर्मकी विशेष शिक्षा कहिये, दोनोंका एक ही मतलब है। विश्वमें प्राणिमात्रका हित करनेवाला अहिंसा धर्म ही है। जैनाचार्योंने इसे दुनियांके सब दुखोंको दूर करनेवाली रामबाण औषधि कहा है। अहिंसा ही जैन धर्मका मूल प्राण है। इसलिए अहिंसा धर्म या जैनधर्म इन दोनोंको एक ही बात समझना चाहिये। प्रचलित राग द्वेष बढानेवाले भिन्न २ मतमतान्तरोंका मोह छोडकर एक मात्र अहिंसक बननेकी विधिको अपनाना चाहिये। सब प्राणियोंकी रक्षा और उनके सुखी होनेका उपाय करना चाहिये। निरंजन निर्विकार परमात्माकी स्तुति सेवामें सबको रुचि रखनी चाहिये जिससे नरसे नारायण होनेका ध्येय और उच्च आदर्श हमेशा याद रहे। क्यों कि–यह प्रसिद्ध है कि जिस चीजका बोध करना हो उसका चित्र सामने रखनेसे वैसे ही संस्कार हो जाते हैं। जैसे वेश्याकी फोटो या दुराचारी की संगति तत्काल विकारका कारण हो जाती है। अथवा, वस्त्रालंकार विभूषित शिशुके सामने उसको रिझाने गाने बजाने आदिकी चेष्टा होती हैं। माता, बहिन त्यागी महात्मा आदिकी मूर्तिके सामने उसी जातिके परिणाम होते हैं। इसलिए यह भी जरूरी है कि–मुमुक्षुको वीतराग निर्विकार निरंजन देवकी मूर्ति अपने सामने रखनी और उसकी उपासना करनी चाहिये, जिससे

उपासक भी वैसा ही शान्त सुखी और परमात्मा बन सके। रागरंग वस्त्रालंकार आदिमें तो दुनियां रातदिन यों ही भूली रहती है। सुख शांतिके लिए वीतरागताका समागम होना बहुत जरूरी है। इसीके अभावमें आज विश्वके शिक्षालयोंमें वीतरागता और अहिंसाकी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये।

विश्व शांतिका दूसरा उपाय, आत्मनिंदा और पर प्रशंसा भी है। इससे मानव जातिमें परस्परमें ईर्ष्या रागद्वेष पक्षपात आदि उत्पन्न न होगा। अहंकार अज्ञान आदिसे ही घर घर, देश देश और विश्वमें विसंवाद अशांति फैली हुई है। इन सबको मिटाकर अहिंसा, वीतरागता और विवेक सहिष्णुता आदि दिव्यगुणोंका स्वपरमें प्रचार होना चाहिये।

ANSWER—Keeping aside the disparity among the various opinions man should be taught the religion ' Non-killing ' and happiness should be restored to him, so that there may always be peace in the world. [12]

Or fame [and peace] can be obtained by reproaching [one's drawbacks] through devotion, by always praising the merits of others; by hiding one's own qualities and elucidating the qualitie of others. [13]

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रश्न—क्रोधस्य मानस्य भयस्य माया-
वृद्धेश्च हेतुर्वद मे कृपाब्धेः ॥

अर्थ—हे दयासागर! क्रोध, मान, भय और माया के बढनेका कारण क्या है सो मुझे बताइये।

PART II (ADHYAYA 2)

Oh! Ocean of mercy, tell me the reason of anger, respect, fear, and the increase of deceits.

क्रोधस्य मानस्य भयस्य माया-
वृद्धेश्च हेतुः कथितः प्रलोभः।
ज्ञात्वेति कस्यापि शुभाशुभस्य,
लोभो न कार्योऽखिलदुखदः कौ।
लोभप्रणाशान्न कदापि लोके,
क्रोधादिमायावशतां प्रयाति।
क्रोधाद्यभावाद्धि सुखं च याति,
स्वात्माऽतिशुद्धोऽप्यजरामरः कौ ॥ १५ ॥

पञ्जिका——क्रोधस्य कोपस्य, मानस्य, भयस्य भीतेः, मायायाः कपटस्य, वृद्धेः, हेतुः, कारणं, लोभः, कथितः, इति, ज्ञात्वा-विज्ञाय शुभस्य, अशुभस्य च कस्यापि वस्तुनः [कृते] अखिलं दुःखं ददातीत्येवंशीलो लोभो न कार्यः । लोभस्य प्रणाशात् (जनः) कदापि कस्मिंश्चिदपि काले, क्रोध आदिर्येषाम् तेषाम् मायाभयमान कषायाणाम्, वशता, अधीनताम् न याति, क्रोधादि कषायाणाम् अभावाच्च, आत्मा, जीवः, सुखं च याति लोके भुवने अतिशयेन शुद्धः, निर्मलः, अजरश्चामरश्चेत्येवंभूतः, कौः पृथिव्या, सुखी-स्वस्थः, भवेत् ।

अर्थ—क्रोध, मान, भय और मायाकी वृद्धिका कारण लोभ है, ऐसा जानकर, दुनियामें सब दुःखोंका देनेवाला किसी भी तरहकी शुभाशुभ वस्तुका लोभ नहीं करना चाहिये । लोभका नाश हो जानेसे लोकमें क्रोध, मान, मायाके वशमें नहीं हो सकता और क्रोधादिके अभावसे निजात्मा अत्यंत निर्मल स्वस्थ और संसारमें अवश्य सुख को प्राप्त करेगी ।

विशेषार्थ—दुनियाके सभी कार्योंका कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है। क्रोध,मान,माया और अनेक सांसारिक उपद्रवोंका भी कारण है। और वह लोभ है इसलिए सुखाभिलाषीको यह लोभ येन केन प्रकारेण जीतना चाहिए। क्यों कि जैसे जड मूल विना वृक्ष नहीं ठहरता, नींव विना महल भी गिर जाता है, उसी प्रकार सबै अनर्थोंका मूल

लोभ के नष्ट हो जानेसे क्रोध मान, माया, भय, ईर्ष्या आदि अनेक सांसारिक दुर्गुण दुःखादि समूल नष्ट हो जाते हैं, और परमानंद प्रगट होने लगता है लोभ दो प्रकारका होता है। एक प्रशस्त लोभ दूसरा अप्रशस्त लोभ। स्वार्थांध होकर दूसरेके धन, स्त्री मान आदि का अपहरण करना, परिग्रहकी तीव्र लालसा होना यह अप्रशस्त लोभ है। इससे ही जगतमें दुःख अशांति और हाहाकार फैला हुआ है, यह महा दुर्गतिदाता है। आत्मकल्याण और विश्व शांतिके लिए इसका तो त्याग करना ही चाहिए। चिदानंद चिद्रूप सुख या स्वानन्द रसमें तृप्त होकर आत्मा में ही निमग्न रहनेकी कला न आई हो तो साधु या गृहस्थ को प्रशस्त लोभ का आश्रय लेना चाहिए। प्रशस्त लोभ वह है जिससे सब प्राणियोंको लाभ पहुंचे जैसे—साधु सत्पुरुषोंके समागमका लोभ। दान, पूजा, सदुपदेश, ऐक्य स्थापन इत्यादि शुभ कार्योंमें परिश्रमपूर्वक लगे रहना। इसका फल परस्पर प्रेम लौकिक शान्ति तथा विपुल कीर्ति है। परन्तु यह ध्यान रहे कि इससे अलौकिक शांति न मिलेगी। आत्मिक स्वराज्य [मोक्ष] अथवा अलौकिक शांतिके लिए तो [अप्रशस्त तो सर्वथा त्याज्य है ही] प्रशस्त लोभका भी त्याग जरूरी है। क्यों कि प्रशस्त लोभ आत्मामें किंचित् कषाय [मल] पैदा करता ही है इस लिए मोक्षार्थीको लोभमात्र छोडना चाहिए, जिससे पूर्ण निराकुलता मिले।

ANSWER—It is told that covetousness is the reason of anger, pride, fear and the increase of deceits. Having known this, one should never have covetousness for good or evil things, which is the cause of all miseries in the world. [14]

If covetousness is abandoned, man will never be influenced by anger, deceits, etc. in the world. You will be happy by the negation of anger and other things, your soul also will be pure and immortal in the world (15)

प्रश्न—लोभोत्पत्तेर्वद स्वामिन् किमस्ति कारणं भुवि

अर्थ—हे स्वामिन् ! दुनियां में यह लोभ क्यों पैदा होता है सो कहिए ।

Oh ! sage, please tell me, what is the source of greed in this world ?

अज्ञानतः स्यात् हृदि लोभजन्म,
समस्तसंतापविवर्द्धकं कौ ॥
ज्ञात्वेति तत्त्यागविधिर्विधेयः,
स्वात्मा यतः स्याद्विमलः प्रबुद्धः ॥ १६ ॥

पञ्जिका—(अज्ञानतः) कौ—लोके, समस्तान् संतापान् विवर्द्धयतीत्येवंभूतं, लोभस्य जन्म, हृदि—मनसि, अज्ञानात् स्यात् इति ज्ञात्वा—अवबुध्य, तस्य लोभस्य, त्यागविधिः—निषेधोपायः,

विधेयः कर्तव्यः, यतः कारणात्, स्वकीय आत्मा, विगतमलः, प्रबुद्धः प्रकर्षेण बुद्धः, स्याद्भवेत् ।

अर्थ—जगतमें संतापोंको बढानेवाले लोभका जन्म, अज्ञानसे हृदयमें होता है, ऐसा जानकर लोभके त्यागका उपाय करना चाहिये, जिससे अपनी आत्मा निर्मल और अत्यंत जाग्रत हो जावे ।

लोभ उत्पन्न क्यों होता है,इस बातको भी ज्ञानचक्षुसे देखने और विवेक ज्ञानसे विचारनेसे मालुम होता है कि अज्ञान ही इसका कारण है। अज्ञानी प्राणी अर्थात् जिसको तत्वातत्वका विवेक नहीं है, वह शिक्षित हो वा अशिक्षित अज्ञानी है। ऐसे अज्ञानीपर लोभका भूत सवार हो जाता है । इसलिए लोभको जीतनेके लिए प्रथम अज्ञानको जीतना आवश्यक है। ज्ञान परिणामसे लोभ उत्पन्न नहीं हो सकता । जहां अप्रशस्त लोभ दिखे वहां तो अज्ञानका डेरा है ही। किन्तु प्रशस्त लोभमें भी अज्ञानका अंश विद्यमान है ही । इसलिए दोनों प्रकारके लोभको जीतना भी ज्ञानोत्पत्तिका कारण है ।

ANSWER—On the world greed, the source of all sufferings, is born of ignorance in the heart. Knowing this a measure should be adopted to abandon it, so that the soul may be pure and lively. (16)

प्रश्न—अज्ञानकारणं स्वामिन्! किमस्ति तत्वतो वद्।

अर्थ—हे स्वामिन्! अज्ञान क्यों होता है, यह भले प्रकार समझाइये।

QUESTION—Oh! preceptor, tell me what is really the cause of ignorance?

अज्ञानहेतुः प्रबलः प्रणीतः
खलप्रसंगः सुखशांतिलोपी।
विपत्प्रदायी कलहप्रचारी,
ज्ञात्वेति तत्त्यागविधिर्विधेयः॥ १७॥

पञ्जिका—प्रकृष्टं बलं यस्य स प्रबलः, अज्ञानस्य हेतुः कारणं, सुखं च शांतिं च लोपयतीत्येवंशीलः, खलैः सह असद्भिः सह सङ्गः सहवासः प्रणीतः कथितः, पुनश्चायं कीदृशः विपदं प्रददाति, कलहं प्रचारयतीत्येवं शीलः, इति ज्ञात्वा अवधार्य तस्य असत्संगत्यागस्य, विधिः प्रयत्नः विधेयः विधातव्यः।

अर्थ—अज्ञानका प्रबल कारण सुख शांतिका नाशक विपत्तिको लानेवाला, कलहको बढानेवाला यह दुर्जनोंका सहवास है, ऐसा जानकर असत्संगतिके त्यागका उपाय करना चाहिए।

विशेषार्थ—इस विश्वमें यह प्रत्यक्ष देखा जाता है तथा अनुभवमें आता है कि अज्ञानकी उत्पत्ति असत्संगति से होती है जैसे कोई पशुओंके साथ रहता है तो उसमें

पशु जैसी आदत आ जाती है, चोरोंकी संगतिसे व्यसन, कलही की संगतिसे कलह आ जाती है, इसी तरह असत्संगति सुख शांति का लोप करके परस्पर क्लेश, दुराचार आदि अनेक आपत्ति का कारण है। असत्संगसे बचनेकी सदा चेष्टा करनी चाहिए। यह असत्संगति दो तरहकी होती है। 'जो आत्माके हित अहितको न जानकर विषय कषाय में निमग्न रहते हैं ऐसे वेषधारी साधुओंकी संगति करना' यह एक तरहकी असत्संगति है तथा पढे या बिना पढे, रात्रिंदिन सांसारिक कार्योंमें फंसे रहनेवाले पुण्यपापके विवेकसे शून्य, सच्चे स्वपर सुधारसे दूर, ऐसे पशु सम गृहस्थोंकी संगति भी असत्संगति है। ऐसी संगति से सिवा आपत्ति और अज्ञान बढनेके कुछ नहीं होता। इसलिए सब प्रकारके असत्संगसे बचना चाहिए।

ANSWER—It is told that the great cause of ignorance, the distroyer of happiness and peace is the company of bad men. It brings difficulties and incites quarrel, knowing this a remedy should be used to leave it. [17]

प्रश्न—सत्संगलक्षणं किं मे वर्तते वद मे गुरो ।

अर्थ—हे मेरे गुरुदेव! मुझे बताइये सत्संगका स्वरूप क्या है।

QUESTION-Oh! my preceptor, tell me the distinctive mark of the company of the good.

सत्संगतः स्यात् स्वयथार्थबोधः
सत्सङ्गतः स्याच्च निजात्मशुद्धिः ।
स्वयं सदा मोक्षरमापतिः स्या–,
च्छंका किलोक्ते विषये न कार्या ॥ १८ ॥

पञ्जिका—सताम् सज्जनानां संङ्गः सहवासस्तस्मात् स्वस्य आत्मनः पदार्थस्य वा यथार्थबोधः–सम्यग्ज्ञानं, सत्संगादेव निजस्य स्वस्य आत्मनः शुद्धिश्च नैर्मल्यं च स्यात् तथा स्वयं कारकः मोक्ष एव रमा लक्ष्मी तस्याः पति स्वामी स्याद्भवेदित्यत्र विषये–प्रोक्तेऽर्थे, किलः इति प्रसिद्धौ, शंका न कार्या, संशयो न करणीयः इति ।

अर्थ–सत्संगसे ही आत्मज्ञान या सम्यग्ज्ञान होता है, सत्संगसे ही अपनी आत्मा भी शुद्ध होती है । और सत्संगसे ही क्रमशः अपने आप मुक्तिलक्ष्मीका स्वामी हो जाता है, इसमें जरा भी शंका नहीं करनी चाहिये ।

विशेषार्थ—प्राणी मात्रके ऐसे भाव तो रहते हैं, हमें ज्ञान मिले, किन्तु केवल मुंहसे कहनेसे अज्ञान दूर नहीं होता, सत्सगति ही ज्ञान प्राप्तिका सर्व श्रेष्ठ और मुख्य कारण है । यदि हम मुख्य कारणको पकडेंगे, तो अवश्य सफल होंगे । जैसे–सिंह हथियार पर न दौडकर मारनेवालेको पकडता है, और कुत्ता हथियारको ही अपना मारनेवाला समझकर

काटनेको दौडता है तो वह अत्यंत मूर्ख समझा जाता है। इसलिए हरएक कार्यके प्रधान कारणको खोजना चाहिये। निजात्मशुद्धि, सच्चे ज्ञान आदिकी प्राप्तिका हेतु सत्संग ही है। विशेष क्या? मोक्षलक्ष्मी भी सत्संगतिवालेको सुलभ है। सत्संगति दर्पणके समान है जिससे अपने सब विकार समझकर दूर किये जासकते हैं। सत्संगति दीपकके समान है जहां, स्व-पर दोनोंको प्रकाश मिलता है, अज्ञानतम नष्ट होता है। इससे मालुम पडता है कि अज्ञानकी निवृत्ति और ज्ञानकी प्राप्तिका सत्संगति ही मुख्य साधन है।

ANSWER—Right knowledge is obtained by keeping company with the good, also the purity of one's soul is caused from the company of the good. He will always be the lord of the lady called salvation No doubt should be raised in the subject mentioned above. [18]

पूर्वोक्तरीतिं सुखशान्तिदात्रीं।
केनाप्युपायेन मुदेति बुद्ध्वा।
सत्संङ्ग एषः सुखदो विधेयः,
निस्वार्थबन्धुर्भवबन्धभेदी ॥ १९ ॥

पञ्जिका—इत्येवं प्रकारेण, सुखं शान्तिं च ददातीत्येवंशीलां पूर्व-प्राक्-उक्तां कथितां रीतिं,-पद्धतिं, केनापि-येन केनापि-

उपायेन द्वारा, मुदा हर्षपूर्वकं, बुध्वा, सम्यक्प्रकारेण ज्ञात्वा, एषः उक्तः, सुखदः, सुखदायकः निस्वार्थबन्धुः—अकारणबन्धुः, भवस्य संसारस्य बन्धनानि भिनत्तीत्येवं शीलः, सताम् सङ्गः—सत्सहयोगः विधेयः स्वीकर्तव्यः ।

अर्थ— सुख और शान्तिको देनेवाली रीतिको, किसी भी उपायसे हर्षपूर्वक भलीभांति समझकर, सदा सुखदायक, अकारण हितकारी, संसारके बन्धनोंको भिन्न करनेवाला यह सज्जनोंका संग अवश्य करना चाहिये ।

विशेषार्थ—इस संसारमें चक्रवर्ती आदि पदवीधरोंको भी विपत्तिका सामना करना पडता है, तब और साधारण मनुष्योंकी तो बात क्या है । इसलिये विपत्तिमें भी शांति सुख दृढता देनेवाला, भवबन्धनसे मुक्त करनेवाला यह सत्समागम निस्वार्थ होकर अवश्य करना चाहिये । जैसे हाथको सुगंधित करना तो चंदन कर्पूर आदि लगाने पडते हैं । अंधकार दूर करना हो तो दीपकका प्रकाश करना पडता है । पिपासा, संताप आदि दूर करनेके लिये हिमशीतल जल जरूरी है । उसीप्रकार संसारमें शांति और ज्ञान प्राप्तिके लिये सत्संगति ही श्रेयस्कर साधन है ।

Having gladly understood by any remedy the above said way, the giver of happiness and peace, this company of the good, the giver of happiness,

should be made. It is a selfless brother and the breaker of the fetters of the worldly life. [19]

प्रश्न–क विद्यते वद स्वामिन्संत्सङ्गः शांतिदःसदा

अर्थ––हे स्वामिन् ! शांतिको देनेवाला यह सत्संग कहां है, अर्थात् कैसे मिलेगा।

QUESTION— Oh ! Sage, tell me where exists the company of the good, which always gives peace ?

स्वानंदतृप्तः सदसद्विवेकी,
शिवप्रदः सत्पुरुषः कृपाब्धिः ।
अन्वेषणात् कौ विरलः कचिद्धि,
दृग्गोचरो जायत एव नृणाम् ॥ २० ॥

पञ्जिका— स्वस्य आत्मनः, आनन्द हर्षस्तेन तृप्तः, पूर्णः, सच्च असच्च तयोर्विवेकी विवेचनशीलः, कल्याणं–प्रददातीत्येवं शीलः कृपायाः=दयायाः अब्धिः=सागरः, एवंभूतः संश्चासौ पुरुषः महात्मा, कौ=भूमण्डले, अन्वेषणात् कचित् यत्र कुत्रचित् विरलः, न तु बाहुल्येन, हि=निश्चयेन नृणाम्=नराणां, दृशाम् गोचरः=विषयः जायते एव उपलभ्यते एव, सत्पुरुषाणाम् सर्वथा अभावो न, किंतु तेषाम् संख्या अतिशयेनाल्पीयसी इति भावः ।

अर्थ—आत्मानंदमें सन्तुष्ट, भले बुरेका विवेकी, कल्याणदाता दयाका भण्डार, ऐसा सत्पुरुष दुनियां में ढूंढनेसे कहीं मनुष्योंको मिल ही जाता है, अर्थात् संतजन दुनियामें विरले हैं, तो भी ढूंढनेपर दुर्लभ नहीं है।

विशेषार्थ—सब कोलाहलको दूर कर अत्यंत ध्यान देने योग्य बात ये हैं कि जो सत्पुरुष है वह आत्मानंदमें मग्न रहता है। सदसत् विवेकसे नित्य जागृत रहता है। प्राणी मात्रको सुखप्रद और अलौकिक कृपा का सागर ही है, ऐसा सत्पुरुष इस भूमण्डलमें परिश्रम पूर्वक अन्वेषण करनेपर दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि "प्रयत्नात् किं न सिद्ध्यति" अर्थात् प्रयत्न करने पर क्या चीज नहीं मिल सकती? किंतु प्रमादी या घर में पडे २ पशुवत् जीवन बितानेवालेको सत्पुरुष न दिखेगा, जैसे गुफावासी या उल्लुको चंद्र सूर्यका दर्शन नहीं होता। सारांश यह है कि प्रयत्न करने पर अवश्य सत्पुरुषका समागम हो सकता है।

ANSWER—The good man is satisfied with the joy of his own, who thinks of the good and the evil, who causes welfare and who is as if a sea of mercy, If sought for him he is very rare to be found out on this world, but he is certainly found by men at a certain place. (20)

प्रश्न—

भ्रमति किं प्रकुर्वन्कौ, सन् गुरो! वद मे मुदा।

अर्थ—हे गुरुदेव! दुनियामें सज्जन हर्षपूर्वक क्या करता फिरता है।

QUESTION—Oh! preceptor, please tell me what does the good man do, wandering on the world in joy?

प्रकाशते कौ च शशीति सूर्यो,
भ्रमन्सदा सर्वहितार्थमेव।
वृष्टिः पतन्तीति करोति शान्तिं,
वायुर्भ्रमन्नेव करोति शुद्धिं ॥ २१ ॥
स्वानन्दमूर्तिः सुगुरुः कृपाब्धिः,
भ्रमन्करोत्येव च विश्वशान्तिम्।
ज्ञात्वेति भक्त्या सुगुरोः स्वसिद्धयै,
करोतु सेवां शरणं प्रयातु ॥ २२ ॥
पश्चात्स्वयं सद्गुरुभिः समं हि,
स्वानन्दचर्चां कुरुते हितार्थम्।
सद्ग्रंथकर्तुर्वरकुन्थुनाम्नो,
भावोऽस्ति सूरेः सदसद्विचारी ॥ २३ ॥

पञ्जिका—कौ=पृथिव्यां शशी=चन्द्रः, सूर्यो=रविश्च, सर्वेषाम्=अखिलानां, हितं, तदर्थं, सर्वभूतकल्याणार्थमेव सदा शश्वत् भ्रमन्=पर्यटन्, प्रकाशते, विराजते, [यथा च] वृष्टिः मेघः पतन्ती सती शांतिं, करोति=विदधाति, भ्रमन्–पर्यटन् एव, वायुः पवनः, शुद्धिं करोति, तथा, स्वानन्दस्य=आत्मानन्दस्य, मूर्तिः वपुः कृपाब्धिः=करुणासागरः, सुगुरु सुष्ठुगुरुः, सद्गुरुर्वीतरागः, इतिभावः, भ्रमन्=यत्र तत्र विहरमाणः विश्वशांतिं=सर्वलोकस्य सौख्यमेव करोति, सम्पादयति, इति ज्ञात्वा=विज्ञाय, स्वसिद्धयै=आत्मलाभार्थं स्वसमीहितसाधनार्थं वा, भक्त्या भक्तिभरावनतः सन्, सुगुरोः, सेवां परिचर्यां करोतु, तस्य=शरणं, प्रयातु। पुनः वीतरागगुरुणा सह आत्महितार्थं, आत्मचर्यां कुरुते, एष श्रीकुंथुसागराचार्यस्य सदसद्विचारी, क्षीर नीर न्यायेन विवेकी भावः, वर्तते।

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, सर्व प्राणियोंके लिए भ्रमण करते हुए प्रकाश करते हैं, बरसते हुए मेघ शांति विस्तार करते हैं, बहती हुई वायु शुद्धिका संचार करती हैं। उसी प्रकार, निजानन्दकी मूर्ति, कृपाके सागर सद्गुरु भ्रमण करते हुए विश्वमें शांति करते हैं। ऐसा जानकर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए भक्तिपूर्वक सद्गुरुकी सेवा करनी चाहिये और उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। फिर उन सद्गुरुके साथ आत्म-हितके लिए आत्मानंदकी चर्चा करनी चाहिये ऐसा इस ग्रंथके कर्ता ऋषिवर श्री कुंथुसागराचार्यका स्वपरविवेकी अभिप्राय है।

विशेषार्थ—सत्पुरुष निःसार कार्यमें हाथ कभी नहीं डालते वह तो ऐसा ही काम करते हैं जिसमें स्वपर कल्याण हो। जैसे चंद्र सूर्य बिना किसी की प्रेरणाके स्वयं ही आकाश में फिर फिर कर भी अन्धकारको छिन्न भिन्न कर देते हैं, मेघ जैसे सर्वत्र घूम घूम करके जलवृष्टि करते हैं, गर्जते हुए सबको शांतिधारा देते हैं। भ्रमण करता हुआ वायु सर्वत्र भेदभाव रहित होकर शुद्धिका संचार करता है। उसी प्रकार स्वानंदमूर्ति सद्गुरु या सत्पुरुष सर्वत्र भ्रमण करता हुआ संपूर्ण विश्वको शांतिमय आनन्द देता है, इसलिए ऐसे सत्पुरुषोंके चरणोंमें " अपने हजारो सांसारिक कार्योंको छोडकर भी " आश्रय लेना चाहिए तथा जहांतक बने सेवा सुश्रूषा करनी चाहिए। फिर उन सत्पुरुषोंके साथ स्वानंद चर्चा करनी चाहिए। अर्थात् जहां आज तक गये नहीं वहांतक जाने आजतक जो वस्तु चखी नहीं, जो रस पिया नहीं, उसके आस्वादन करनेका उपाय अति विनयसे पूछना चाहिए। इस ग्रंथके कर्ताका (आचार्य श्री १०८ श्रीगुरु कुंथुसागरजीका) ऐसा स्वपर कल्याणकारक अभिप्राय है, इसलिए पूज्यवर गुरुजीके भावोंका मनन करके इस दुःख पूर्ण ससारसे पार होनेका पवित्र हृदयसे प्रयत्न करना चाहिए।

जहां राग द्वेषका पूर्ण अभाव, सर्वज्ञता आदि गुण है, वह तो परमात्मा ही है। उनका साक्षात् दर्शन दुर्लभ

होनेसे उनकी वीतराग मूर्ति भी कथंचित् आत्म कल्याण की प्रबल कारण होती है।

जो अंतरंग बहिरंग परिग्रहको छोडकर ज्ञान वैराग्य से परिपूर्ण रहते हैं, रागद्वेष रहित, नि स्वार्थ निष्पक्ष सबका भला करते हैं ऐसे निर्ग्रंथ साधु पूर्ण सत्पुरुष संगतिके योग्य हैं। बाकी जिनमें जितने अंशोंमें वीतरागता अर्थात् निष्पक्षता है, वे भी उतने ही अंशोंमें सत्पुरुष हैं ऐसा जानना।

ANSWER–The moon and the sun shine and always move only for the advantage of all on the world, (Just as) the cloud pours down (on the earth) and makes peace, and the blowing wind makes purification, (so also) the good preceptor (preacher), the idol of his own joy. the ocean of mercy, wanders and makes peace on the world. Having known this one should surrender and wait upon the good preceptor through piety for one's final emancipation. (21–22)

Then, for his own benefit he himself discusses about the soul with the good preceptor. This is the discriminating thought of the good and the evil, of the worthy preceptor named " KUNTHU-SAGAR " the writer of this good book. (23)

प्रश्न-सत्संगस्य फलं किं स्यात् शांतिदं वद मे गुरो!

अर्थ—हे स्वामिन्! बताइये सत्संगका क्या फल होता है, जिससे शांति प्राप्त हो।

QUESTION:—Oh! Sage, tell me what is the result of keeping company with the good, by which peace is made?

स्वानन्दभोक्ता गुरुणा समं हि,
स्वानन्दचर्चा करणेन शांतिः।
शुद्धस्तवात्मा सदसद्विवेकी,
भवत्यवश्यं स्वपदे निवासी ॥ २४ ॥

पञ्जिका—स्वानन्दं=निजात्मरसं, भोक्ता, भुनक्ति, अनुभवतीत्येवं शीलस्तेन गुरुणा, समं=सार्कं, स्वानंदस्य=चर्चा, वार्ता, तस्याः करणेन हि निश्चयेन शांतिर्भवति, तव=त्वदीय, आत्मा अपि शुद्धः, निर्मलः, सच्च असच्च विवेकीत्येवं शीलः, अवश्यं, ध्रुवरूपेण, स्वपदे=निजपदे, निवसतीत्येव शीलः भवति, संजायते।

अर्थ—आत्मानन्दके भोगी गुरुके साथ निजानन्दकी चर्चा करनेसे निश्चयपूर्वक शांति होती है, और इससे तेरी आत्मा भी निर्मल, सद् असद्विवेकी और अवश्य ही निजपदकी निवासी हो जायगी।

विशेषार्थ—सत्संगका इतना महत्व बताया, अब यह जानना भी आवश्यक है कि इसका फल क्या होता है। क्योंकि फल विना तो किसी चीजका महत्त्व भी निरर्थक है, इसलिए इसका फल भी सुनो। स्वानन्दको अनुभव

करनेवाले सद्गुरुके साथ स्वराज्य अर्थात् आत्मिक-राज्यकी चर्चा करनेसे आत्माके अंदर हमेशाके लिए अलौकिक शांति उत्पन्न होती है। अर्थात् आकुलता मिटकर आत्मा अत्यंत शुद्ध सदसद्विवेकी, चिदानंद चिद्रूपमें निवास करने वाला होता है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। इसलिए प्राणीमात्रका भेदभाव छोडकर सतसमागमका अनुपम फल प्राप्त कर कृतकृत्य होना चाहिए, यही मानव जीवनका सार है।

ANSWER:—Peace ensues by making discussion on one's own joy with the preceptor who has experienced his joy (about the soul) (By this) your soul will be necessarily purified and will be discriminating between the good and the evil. It will rest at its own place (24)

ग्रन्थं ह्यमुं भक्तित एव भव्याः,
पठन्ति ये केऽपि नमन्ति नित्यम् ॥
सुखप्रदं वांछितदं सुवस्तु,
लब्ध्वा लभन्ते ह्यजरामरत्वम् ॥२५॥

पञ्जिका— अमुम्=हस्तगतं, ग्रंथ=लघुशान्तिसुधासिंधु नामानं, ये केऽपि नराः, कीदृशा, भव्याः=भद्राः, भक्तितः=भावेन पठन्ति, नित्यं=सदा नमन्ति, प्रणमन्ति, ते=उक्ता प्राणिनः, सुखप्रदं, वांछितदं सुष्ठु वस्तु=सद्द्रव्यं, लब्ध्वा=परिप्राप्य

हि=निश्चयेन, अजरश्चामरश्च-अजरामरौ=तयोर्भावः, तत्=जरामरणरहितत्वं, लभन्ते प्राप्नुवन्ति ।

अर्थ--जो भव्य प्राणी इस "लघु शांतिसुधासिंधु" नामक ग्रंथको हमेशा भक्तिसे पढते हैं और प्रणाम करते हैं वे सुखदायक मनोवांछित वस्तुको प्राप्तकर जन्म जरामरण से भी मुक्त हो जावेंगे ।

विशेषार्थ-यह ग्रंथ अत्यंत संक्षेपरूप है, किंतु इसका जितना भी मनन किया जायगा, उतना ही अर्थ मिलेगा । इसलिए सच्चा सुख, शांति, और अजरामरपना प्राप्त करनेवाला है । यह प्रत्येक व्यक्ति समाज और सम्पूर्ण विश्वको सच्ची ज्ञानज्योति प्रदान करें, ऐसी ग्रंथकर्ताकी शुभ भावना और आशिष है !

Pious men who will read and bow this book through piety will obtain the desired good thing giving happiness, and they will get the state which is free from oldage and death. (25)

शांतिसिंधोः सुधर्मस्य ग्रंथोऽयं सुप्रसादतः ।
लिखितः स्वात्मनिष्ठेन, कुन्थुसागरसूरिणा ॥२६॥

पञ्जिका—अयं=प्रस्तुतो ग्रंथः, शान्तिसिन्धोः=श्री शान्तिसागराचार्यस्य श्री सुधर्मसागराचार्यस्य च सुप्रसादतः=अनुभावात्, स्वात्मनिष्ठेन निजात्मतत्परेण, श्रीकुन्थुसागराचार्येण, लिखितः=प्रणीतः ।

अर्थ--यह प्रस्तुत ग्रंथ श्री शांतिसागराचार्य, और श्री सुधर्मसागराचार्यकी महती कृपासे आत्मनिष्ठ श्री कुन्थुसागराचार्यने बनाया है ।

This book is written by the (worthy) sage **Kunthusagar** who is keen [finds pleasure in] about his soul, through the good grace of the preceptors **Shantisagar** and **Sudharmasagar**. (26)

—* प्रशस्ति *—

मोक्षं गते महावीरे, विश्वशांतिविधायके ।
चतुर्विंशति संख्याते ह्यष्टषष्ट्यधिके शते ॥२७॥
उदयादिपुरे राज्ये धुलेव शुभपत्तने ।
पुण्यस्तोत्रसमाकीर्णे, आदीश्वरजिनालये ॥२८॥
फाल्गुनासितपक्षस्याष्टम्यां शुभतिथौ सता ।
स्वात्मराज्यनिविष्टेन कुन्थुसागरसूरिणा ॥ २९ ॥
चतुः संघसमं स्थित्वाभव्यानां शांतिहेतवे ।
लघुशांतिसुधासिंधुः ग्रंथोऽयं रचितः प्रियः ॥३०॥

अर्थ—विश्वशांति विधायक भगवान् महावीरस्वामी के निर्वाण संवत् २४६८ में शुभतिथी फाल्गुन कृष्ण ८ के दिन चतुःसंघ सहित आत्मानंद राज्यमें प्रविष्ट दिगम्बराचार्य श्रीकुंथुसागरजीने उदयपुर राज्यके धुलेव नगर में श्री वृषभदेव भगवानके मंदिरमें बैठकर यह परम प्रिय ग्रंथ ' लघु शान्ति सुधासिंधु ' आत्म शांतिके लिए एवं भव्योंकी शांतिके लिए रचा है ।

विशेषार्थ—यह स्थान 'श्री केशरियाजी तीर्थ' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस मे श्री ऋषभदेव भगवान् की वीतराग छविमय मूर्ति है तथा बावन जिनालय हैं। मूर्तिके छविसे आकर्षित होकर इस तीर्थको श्वेताम्बर, वैष्णव, भील आदि सभी अपना मानने लगे हैं, तथा स्तुति स्तोत्र आदि से निरंतर यह मंदिर शब्दायमान रहता है।

हिंसा प्रतिहिंसा, लोभ, लालसासे दुखी दुनियाको देखकर एवं भव्योंके हृदयमें शांतिका संचार हो इस करुणा-भावसे ही इस ग्रंथकी रचना की है, अन्य प्रयोजनसे नहीं। क्योंकि वीतरागी ऋषिवरके कोई भी मनोकामना नहीं।

Prashesti.

This beloved book, " Laghu Shanti Sudhasindhu " [a small ocean of peace and nector], is written (constructed) for peace by the naked [Digambar] preceptor Kunthusagar, the writer of many books, on the auspicious eighth day of the lunner half of the month of Falguna, while staying with the company of four kinds of sages in the temple of Rishabba Dev at the town Dhulev in the Udaipur State, whose auspicious fame is widely spread, in the 2468th year of the salvation of **Lord Mahavira,** the maker of peace on the world. (27-30)

शांतिः ! शांतिः ! ! शांतिः ! ! !

इति श्री विश्वशांति प्रवर्तकः सुधाविभूषितः
लघुशांतिसुधासिन्धुर्ग्रन्थोऽयं समाप्तिमगमत ॥